समस्त दिव्य तत्त्वों का ज्ञान हो जाता है। पूर्ण परात्पर तत्त्व निराकार नहीं है। यदि वे निराकार होते अथवा किसी अन्य तत्त्व से न्यून होते, तो उनकी पूर्ण परात्परता सिद्ध ही नहीं होती। पूर्ण परतत्त्व में उन सभी तत्त्वों का समावेश होना आवश्यक है, जो हमारे अनुभव में आते हों अथवा जो हमारे अनुभव से अतीत ही क्यों न हों। अन्यथा उसे पूर्ण नहीं कहा जा सकता। इससे सिद्ध है कि पूर्ण परतत्त्व श्रीभगवान् अमित शक्तियों से युक्त हैं।

श्रीकृष्ण विविध शक्तियों के साथ किस प्रकार क्रियाशील हैं, भगवद्गीता में इसका भी वर्णन है। जिसमें हम बद्ध हैं, वह प्राकृत-जगत् भी अपने में पूर्ण है; क्योंकि सांख्य के अनुसार इसका सृजन चौबीस तत्त्वों से हुआ है। ये इस भाँति पूर्ण रूप से संगठित हैं कि इस जगत् के धारण-पोषण के लिए सम्पूर्ण आवश्यक पदार्थों का स्वयं निर्माण कर सकते हैं। अतः इसमें न तो कोई विजातीय तत्त्व क्रियाशील है और न ही कोई अभाव है। परम पूर्ण शक्ति के द्वारा निश्चित किया हुआ इस सृष्टि का एक नियत काल है, जिसके पूर्ण हो जाने पर पूर्ण तत्त्व की पूर्ण व्यवस्था से इस अनित्य सृष्टि का विनाश हो जाता है। जीवों को, जो अणु-अंश होते हुए भी अपने में पूर्ण हैं, पूर्ण तत्त्व की प्राप्ति के लिए पूर्ण सुविधा प्रदान की गई है; पूर्ण तत्त्व के ज्ञान की अपूर्णता के कारण ही विविध प्रकार की अपूर्णताओं की प्रतीति होती है। अस्तु, भगवद्गीता में वैदिक विद्या के पूर्ण ज्ञान का समावेश है।

वैदिक ज्ञान सर्वथा पूर्ण और अमोघ (दोषमुक्त) है। वैष्णव उसे ऐसा ही मानते हैं। उदाहरणार्थ, स्मृति का विधान है कि यदि पशु-विष्टा का स्पर्श कर लिया जाय तो आत्मशुद्धि के लिए स्नान करना आवश्यक है। गोमय भी पशु-विष्टा है। परन्तु वैदिक शास्त्रों में गोमय को शुद्धिकारक माना गया है। यद्यपि इसमें विरोधाभास प्रतीत होता है, किन्तु वैदिक-विधान होने से यह मान्य है; इसे मानना वस्तुतः भूल न होगी। अब तो आधुनिक विज्ञान के द्वारा भी सिद्ध हो चुका है कि गोमय में सारे कृमिनाशक गुण हैं। अतएव संशय-भ्रम से सर्वथा मुक्त होने के कारण वैदिक ज्ञान पूर्ण है। भगवद्गीता इसी वैदिक ज्ञान का सार-सर्वस्व है।

वैदिक ज्ञान अनुसंधान का विषय नहीं है। हमारा अनुसन्धानकार्य अपूर्ण (दोषयुक्त) है, क्योंकि जिन इन्द्रियों से हम अनुसन्धान करते हैं, वे स्वयं अपूर्ण तथा दोषयुक्त हैं। हमें पूर्ण ज्ञान को ग्रहण करना है, जो भगवद्गीता के अनुसार परम्परा से अवतरित होता है। यह परम्परा ही ज्ञान-प्राप्ति की यथार्थ स्रोत है, जो परमगुरु भगवान् से प्रारम्भ होकर अनुगामी आचार्यों के रूप में चली आ रही है। साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण से गीतोपदेश सुनकर अर्जुन ने भी विरोध किये बिना उनके एक-एक वचन को स्वीकार किया है। भगवद्गीता के एक अंश को मानकर दूसरे को न मानने की स्वतन्त्रता किसी को भी प्राप्त नहीं है। हमें भगवद्गीता को मनमाने अर्थ लगाए बिना, उसके किसी भी अंश का बहिष्कार किये बिना, हठधर्मी के बिना यथारूप में ग्रहण करना है। गीता तो वास्तव में वैदिक ज्ञान का सर्वाधिक पूर्ण प्रतिपादन है। वैदिक ज्ञान